वीर संवत २४९२, माध शुक्ल १०, सोमवार

दि.३१-१-१९६६, गाथा १, २ प्रवचन नं.-१३

तीसरी ढाल, उसकी पहली गाथा, उसका भावार्थ चलता है। पाँचवां भाग है। आया है न ?

सम्यग्दर्शन ज्ञान चरन शिवमग सो द्विविध विचारो;

जो सत्यारथ-रूप सो निश्चय, कारण सो व्यवहारो।।

उसकी व्याख्या चलती है। उसमें दो प्रकार कहे हैं। उसका हेतु ज़रा सिद्ध करते हैं। है तो दो प्रकार से कथन, परन्तु यथार्थ में एक है – ऐसा कहना है। कथन में दो है और तुम एक सिद्ध करते हो ? समझ में आया ? कथन में दो है। '**मग, सो द्विविध विचारो; जो सत्यारथरूप सो निश्चय कारण सो व्यवहारो।**'

मुमुक्षु :- विचारने का फल।

उत्तर :- यह तो दोनों को विचारने को कहा है, विचार का फल नहीं। यह तो दोनों को विचारने को कहा है। तात्पर्य यह कि दो है और तुम फिर उसमें एक क्यों कहते हो ? यह तो जरा स्पष्ट करने के लिए (कहा है)। है तो दो, कथन के लिए उसे निम्नांकित पेराग्राफ लागू पड़ेगा। छट्ठा, छठवाँ है वह। समझ में आया ? उसके साथ मिलना चाहिए न ?

'**मोक्षमार्ग तो एक ही है।**' यह कथन किसलिए है ? यहाँ गाथा में दो (कहा) है, दो (अर्थात्) निश्चय, वह सत्य है और व्यवहार, वह उपचार है। इस अपेक्षा से उसे निश्चय, वह सत्य एक है – ऐसा कहना है, वरना उपचार दूसरा निमित्तरूप से, व्यवहार सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है। '**मोक्षमार्ग तो एक ही है। वह निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकतारूप है।**' तीन की दर्शन-ज्ञान और चारित्र की एकता, वह मोक्षमार्ग एक है। उसका कथन, एक को

सिद्ध करने का कथन 'प्रवचनसार' गाथा ८२ और १९९ में कहा है समझ में आया ? ८२ में ऐसा कहा कि मोक्षमार्ग तो एक ही है। परन्तु यहाँ जो कहा है, उसके कथन के दो प्रकार वर्णन किये हैं समझ में आया ?

'प्रवचनसार' गाथा ८२ में 'मोक्षमार्ग एक ही है, अन्य दूसरा कोई नहीं;' तथापि यहाँ दो कहे हैं (उसका कारण) उसका कथन करना है। यथार्थ मोक्षमार्ग तो आत्मा के आश्रय से सम्यग्दर्शन ज्ञान-चारित्र (प्रकट हो), वही मोक्षमार्ग है, परन्तु उसके साथ सहचररूप, उपचाररूप निमत्ति कहना हो, उसका ज्ञान कराने को दो प्रकार से मोक्षमार्ग गाथा में कहा है। 'प्रवचनसार' (गाथा) १९९ में भी मोक्षमार्ग तो एक ही है - ऐसा कहा है; परन्तु यहाँ जो दूसरा कहा है, वह निमित्त को सहचर बतलाने के लिए कहा है। इसलिए कितने ही को ऐसा (होता है) कि इसमें दो कहे हैं और तुम एक स्थापित करते हो। यह तो गाथा से विरुद्ध है।

अब इसके लिये यहाँ ज़रा मोक्षमार्ग की (बात लीखी है)। 'मोक्षमार्गप्रकाशक'में ३१५ (पृष्ठ में) तो यह अधिकार है कि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र - आत्मा की सम्यक् - निश्चय श्रद्धा, उसका ज्ञान और चारित्र इन तीन की एकता, वह एक मोक्षमार्ग है। वह तीन मोक्षमार्ग नहीं है। निश्चय-व्यवहार की बात वहाँ नहीं है। समझ में आया कुछ ?

आत्मा... वह यहाँ दूसरी गाथा में स्पष्ट कहेंगे। आत्मा का जो निश्चय स्वरूप शुद्ध आनन्द ज्ञायकमूर्ति, उसकी अन्तर में स्वरूप की निर्विकल्प प्रतीति / दर्शन (होवे), उसे निश्चय समकित कहा है। उसका ज्ञान और उसकी बात कहेंगे। स्थिरता-चारित्र (कहेंगे) परन्तु साथ में व्यवहार होता है, उसका कथन इसमें भी कहा है और मोक्षमार्गप्रकाशक में भी कहा है। दर्शन-ज्ञान और चारित्र - ऐसे तीन मार्ग नहीं है - ऐसा ३१५ (पृष्ठ पर) सिद्ध करना है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीन होकर एक मोक्षमार्ग है, ऐसा। समझ में आया ?

'**अब, मोक्षमार्ग तो दो है नहीं...**' अब यहाँ दो कहे है, उसके समक्ष दो नहीं है - ऐसा सिद्ध करना है, इसलिए लोगों को जरा-सा विरोध लगता है... '**परन्तु मोक्षमार्ग का निरूपण दो प्रकार से है।**' उसका कथन दो प्रकार से है। समझ में आया ? '**जहाँ सच्चे मोक्षमार्ग को मोक्षमार्ग निरुपण किया है...**' यह डोटरमलजी की शैली है। '**वह निश्चयमोक्षमार्ग है...**' जो

आत्मा में अनुभव की दृष्टि होकर सम्यग्दर्शन हुआ और आत्मा का ज्ञान हुआ, वह तो निश्चयमोक्षमार्ग है। '**तथा जहाँ जो मोक्षमार्ग तो है नहीं परन्तु मोक्षमार्ग का निमित्त है...**' यह यहाँ इसमें साथ सिद्ध किया है... '**वा सहचारी है...**' अर्थात् साथ है, साथ। आत्मा के आश्रय से मोक्षमार्गनिश्चय दर्शन-ज्ञान-चारित्र हो, उसके साथ नव तत्त्व की श्रद्धा का भेदवाला व्यवहार होता है, इससे उसे सहचारी मोक्षमार्ग कहा जाता है। दर्शन-ज्ञान-चारित्र व्यवहार होता है।

'**वहाँ उसे उपचार से मोक्षमार्ग कहें, वह व्यवहारमोक्षमार्ग है...**' वह यहाँ इसमें - पहली गाथा में सिद्ध किया है। समझ में आया ? '**मग सो द्विविध विचारो**' - मार्ग है, उस प्रकार से जानना। वह जानने में सत्यार्थ-यथार्थ है। कारण के साथ सहचर गिनकर, निमित्त - गिनकर व्यवहार मोक्षमार्ग कहा गया है। मोक्षमार्ग तो नहीं है, परन्तु निमित्त - सहचारी (देखकर) उसे उपचार कहते हैं, वह व्यवहारोक्षमार्ग है। वह यहाँ पहली गाथा में सिद्ध किया है। समझ में आता है न भाई ! साथ में होता है, इसलिए - यह बात पहली गाथा में सिद्ध की है।

'**क्योंकि निश्चय-व्यवहार का सर्वत्र ऐसा ही लक्षण है...**' यह 'टोडरमलजी' की व्याख्या है कि निश्चय और व्यवहार का लक्षण सर्वत्र ऐसा है कि ऐसा। '**सच्चा निरूपण, वह निश्चय...**' सत्य मार्ग जो होवे, सच्चा हो, यथार्थ हो, वास्तविक हो, अन्दर यह जो सत्यार्थ कहा है, वह निश्चय '**उपचार निरूपण, वह व्यवहार।**' अर्थात् जो व्यवहार कहा है - '**कारण सो व्यहारो;**' उसे उपचार से कहा है - ऐसा यहाँ सिद्ध किया है। समझ में आया ? निश्चय और व्यवहार के विवाद बहुत हैं।

सच्चा कथन है कि आत्मा से जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र होता है - यह सच्चा कथन है, इसलिए निश्चय है और साथ में उपचाररूप से सहचर होता है, उसे व्यवहार कहते हैं। '**इसलिए निरूपण की अपेक्षा से दो प्रकार से मोक्षमार्ग जानना...**' ऐसा यहाँ जो पहली गाथा में कहा है न ? इस कथन की पद्धति की रीति से निश्चय के साथ सहचर उपचार से व्यवहार होता है, इसलिए उसे मोक्षमार्ग कहा है। '**परन्तु एक निश्चयमोक्षमार्ग है तथा एक व्यवहारमोक्षमार्ग...**' भाषा देखी ? एक निश्चयमोक्षमार्ग है और फिर एक दूसरा

व्यवहारमोक्षमार्ग है... एक मोक्षमार्ग निश्चय और एक मोक्षमार्ग व्यवहार – ऐसे 'एक' पर वज़न है – ऐसा नहीं है; मोक्षमार्ग तो एक है, परन्तु उसके साथ व्यवहार है, उसे निमित्त गिनकर उपचार से कहा है। इसलिए एक निश्चयमोक्षमार्ग है और एक व्यवहारमोक्षमार्ग – ऐसे दो नहीं है। कुछ समझ में आया ?

मुमुक्षु :– दो होकर एक है।

उत्तर :– नहीं नहीं। दो होकर एक (नहीं); एक ही मोक्षमार्ग है, परन्तु साथ में सहचर अनुकूल व्यवहार देखकर, निश्चयमोक्षमार्ग के साथ ऐसा सहचर है; इसलिए उसका कथन साथ में किया है, वरना वह मोक्षमार्ग है नहीं परन्तु उसे सहचर देखकर कहा है। इसलिए इसे दो प्रकार का मोक्षमार्ग कथन की अपेक्षा से है। समझ में आया ? परन्तु एक निश्चयमोक्षमार्ग और यह एक व्यवहारमोक्षमार्ग, ऐसी भाषा है; दो मोक्षमार्ग है – ऐसा नहीं है। एक यह और एक यह ऐसा नहीं है, परन्तु एक यह निश्चय, वह सच्चा और एक यह, एक यह दूसरा – एक उपचार से सहचर देखकर कहा है। उसे दो होकर मोक्षमार्ग है – ऐसा नहीं है। बहुत कड़क बात है। 'टोडरमलजी' का कथन कितना है !

एक निश्चयमोक्षमार्ग और एक व्यवहारमोक्षमार्ग... पहला व्यवहार एक फिर निश्चय एक हो – ऐसा नहीं है – यह कहते हैं। समझ में आया ? पहला एक व्यवहारमोक्षमार्ग हो, दूसरे निश्चय की अपेक्षा रहित, भाई ! और फिर दूसरा एक निश्चय हो, वर्तमान व्यवहार की अपेक्षा रहित हो – ऐसा नहीं है, ऐसा है। यह एक-एक (कहने की) शैली रखी है, उसका हेतु यह है। एक निश्चयमोक्षमार्ग और एक व्यवहारमोक्षमार्ग – ऐसे दो नहीं है। समझ में आया ? दो होवे तो एक व्यवहारमोक्षमार्ग हो, वहाँ निश्चय नहीं होगा, तो अपेक्षा रहित हो गया (परन्तु) ऐसा नहीं है और अकेला निश्चय हो, वहाँ व्यवहार नहीं हो, – ऐसा नहीं है।

यहाँ तो मोक्षमार्गआत्मा के आश्रय से जो निश्चयमोक्षमार्ग है, वह एक ही सच्चा है परन्तु कथन में दूसरा सहचर साथ में रहा हुआ है, निमित्तरूप में रहा हुआ है, इसलिए उसे व्यवहार कहा जाता है। नीचे अकेला एक व्यवहारमोक्षमार्ग और ऊपर अकेला निश्चयमोक्षमार्ग – ऐसा वस्तु का स्वरूप नहीं है। समझ में आया ? '**मानना मिथ्या है।**' एक निश्चयमोक्षमार्ग और एक

व्यवहारमोक्षमार्ग है, अर्थात् ? एकसाथ रहित के, दो में एक-एक अलग है, एक-एक अलग करके मोक्षमार्ग है - ऐसा नहीं है। इसमें समझ में आया ?

ऐसा कहते हैं कि देख भाई ! इसमें परद्रव्य की भिन्नता कहेंगे। यह सामान्य की व्याख्या करेंगे। सामान्य-विशेष दो प्रकार है। आत्मा, अपने स्वरूप को, शुद्ध पवित्र है - ऐसा स्व आश्रय से सम्यग्दर्शन, स्व का ज्ञान और स्व की स्थिरता (करे) - ऐसा एक मार्ग है, वही निश्चय और यथार्थ है, परन्तु साथ-साथ उसे अनुकूलरूप निमित्त ऐसा होता है कि जो सर्वज्ञ द्वारा कथित छह द्रव्य अथवा सर्वज्ञ की श्रद्धा या सर्वज्ञ को (साधनेवाले) गुरु-साधक जीव की श्रद्धा या नव तत्त्व की श्रद्धा या पञ्च महाव्रत - ऐसा एक विकल्प साथ में निमित्तरूप साथ होता है; इसलिए उसे कथन में दो प्रकार से कहा है, परन्तु एक निश्चयरहित व्यवहार है, और एक व्यवहाररहित निश्चय है - ऐसी मोक्षमार्ग की कथन की पद्धति है ही नहीं। ऐसा है नहीं - ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

मुमुक्षु :- दो होकर एक कहने में क्या बाधा है ?

उत्तर :- दो होकर एक नहीं; निश्चय एक ही है। दूसरा तो ऐसा सहचर देखकर, अनुकूल निमित्त देखकर सहचर में - साथ में कहा है, है नहीं। नहीं, उसे कहना - इसका नाम व्यवहार है। है तो यह एक ही है, दो होकर एक - ऐसा नहीं। अरे... ! ठीक है, तर्क तो होता है न ! समझ में आया ?

आत्मा शुद्ध अखण्ड ज्ञानमूर्ति अनन्त गुण का पिण्ड उसका एकरूप (है)। ऐसी अन्तर निश्चय निर्विकल्प प्रतीति-अनुभव (हुई), वह एक ही सम्यग्दर्शन है और आत्मा का जो ज्ञान, वह एक ही ज्ञान है; उसमें स्थिता, वह एक ही चारित्र है। यह तीन होकर एक है। तीन होकर तीन मार्ग नहीं है। ये तीन होकर एक मार्ग है। अब एक मार्ग है तो भी साथ में ऐसे विकल्प की व्यवहार से अनुकूलता (देखकर) कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र की श्रद्धा का अभाव, अव्रतादि का अभाव या उसके प्रमाणमें जो राग की मन्दता की व्यवहार श्रद्धा, व्यवहार ज्ञान और व्यवहार चारित्र (होवे) - ऐसे निमित्त को साथ में गिनकर, साथ गिनकर, साथ गिनकर उसे कथन में दूसरा मोक्षमार्ग व्यवहार है, दूसरा इसलिए दूसरा - ऐसा कहा है, है नहीं। समझ में आया ?

इसलिए उसमें दो होकर एक – ऐसा भी नहीं और आगे – पीछे एक–ऐसा भी नहीं, भाई !

मुमुक्षु :– मार्ग नहीं परन्तु मार्ग – योग्यता...

उत्तर :– योग्यता अर्थात् उपचार होने के लिए निमित्त है न ? निमित्त में योग्यता ऐसी है। निमित्त में ऐसी योग्यता है कि उसमें कथन आता है कि यह मोक्षमार्ग व्यवहार हैं। है नहीं, उसे कहने का नाम व्यवहार है और है उसे जानना, उसका नाम निश्चय है – ऐसा यहाँ है। तब है नहीं तो क्यों कहा ? कि ऐसे निमित्त की सहचरता देव–गुरु–शास्त्र की, नव तत्त्व की श्रद्धा का विकल्प या शास्त्र का ज्ञान या पंच महाव्रतादि के परिणाम (स्वरूप) ऐसा ही निमित्त उसे होता है, दूसरा नहीं होता – ऐसा व्यवहार से अनुकूल गिनकर उसमें व्यवहारमोक्षमार्ग का आरोप दिया है, वस्तु (मोक्षमार्ग) है नहीं। बन्धमार्ग है, उसे मोक्षमार्ग कहने का नाम व्यवहार है। आहा..हा..!

इसलिए दो होकर एक – ऐसा नहीं; दो अलग–अलग – ऐसा नहीं, मात्र साथ में यह निश्चय है – ऐसी एक निमित्त की व्यवहार से अनुकूलता है। निश्चय से तो प्रतिकूल है। समझ में आया ? वस्तु का स्वभाव अपने आश्रय से हुआ दर्शन–ज्ञान–चारित्र एक ही सत्य है। तीन होकर, हाँ ! तीन होकर एक ! परन्तु साथ में एक ऐसे विकल्प की उसमें योग्यता होती है कि जिसमें निमित्तपने का, व्यवहार का आरोप किया जा सकता है। वह मोक्षमार्ग है नहीं, वह तो बन्धमार्ग है। इसलिए नहीं है, उसे कहना और साथ है, उसे ऐसे आरोप देना – इसका नाम व्यवहारमोक्षमार्ग कथन में आता है। वस्तु में ऐसा है नहीं।

'पंचाध्यायी'कारने तो ऐसा लिया है, भाई ! व्यवहार, पता है ? वचनात्मक कहना, वह व्यवहार, ऐसा उन्होंने लिया है। लो ! फिर यह आया। 'पंचाध्यायी' में तो ऐसा कहा है कि वचनात्मक कहना, वह व्यवहार है; वस्तु में वह नहीं है। वाणी द्वारा कहना कि ऐसा यहाँ है, ऐसा है – इस वचनात्मक को उन्होंने व्यवहारनय कहा है। समझ में आया ? निमित्त में ऐसे रागादि है, यह वाणी से ऐसा कहना कि यह एक व्यवहार (है)। वस्तु में ऐसा नहीं है। है न ? व्यवहारनय की व्याख्या ऐसी की है। पता है या नहीं ? पहले बहुत बार कहा गया है। इस वचनात्मक को ही व्यवहार कहते हैं। अर्थात् ? वचनात्मक अर्थात् ? वह कथन, निरूपण

आता है न ? उसमें उसे व्यवहार आता है, यह राग, यह विकल्प, यह शास्त्रज्ञान इसे व्यवहार कहते हैं। वस्तुस्थिति है नहीं। उसमें व्यवहारनय की व्याख्या ही यह की है। उसमें भी नहीं की ? अपने कहाँ आया था ? 'कलशटीका'। 'कलशटीका' में आया था, वचनात्मक। भाई ! आया था। 'कलशटीका' में कहीं आया है। कथन, ऐसा नहीं। यह व्यवहार वचनात्मक है – ऐसा (आया) है। वह है, आया था, तब कहा था। सब कहाँ याद है, किस जगह है ? 'कलशटीका' में कहीं होगा ? वचनात्मक। वहाँ आया था, उस दिन कहा था। आया, देखो ! पाँचवा कलश है। कहा था, देखो भाई !

'**व्यवहारणनयः यद्यपि हस्तावलम्बः स्यात्**' इसकी व्याख्या की। व्यवहारनय अर्थात् '**जितना कथन।**' यह उस दिन कहा था। यह 'पंचाध्यायी' की शैली है। यह लिखनेवाले 'राजमल्लजी' स्वयं है न ? 'पंचाध्यायी' में ऐसा (ही लेते हैं), व्यवहार अर्थात् वचन से कहना। देखो ! यहाँ अपने आया है। चिह्न भी किया है। समझ में आया ? '**उसका विवरण - जीव वस्तु निर्विकल्प है। वह तो ज्ञानगोचर है। वही जीव वस्तु को कहना चाहे, तब ऐसा ही कहने में आता है कि जिसके गुण दर्शन-ज्ञान-चारित्र वह जीव। यदि कोई बहुत साधिक (अधिक बुद्धिमान) हो तो भी ऐसे ही कहना पड़े। इतना कहने का नाम व्यवहार है।**' इतना कहने का नाम व्यवहार है। देखो ! दूसरी बार आया। तब कहा था, उस दिन व्याख्या हुई थी। याद है ? समय नहीं होता और याद भी नहीं रहे, आपने ही यह सब किया है। सभी पाठ तो आपने समरूप किये हैं। शब्द, भाषा व्यवस्थित की है।

'**यहाँ कोई आशंका करेगा कि वस्तु निर्विकल्प है, उसमें विकल्प उपजाना अयुक्त है। वहाँ समाधान इस प्रकार है कि व्यवहारनय हस्तावलम्ब है। जैसे कोई नीचे पड़ा हो तो उसे हाथ पकड़कर ऊपर लेते हैं; वैसे ही गुण-गुणीरूप भेद कथन ज्ञान उपजने का एक अंग है।**' देखा ! इस प्रकार सारी व्याखया की है और 'पंचाध्यायी' में भी, वचनात्मक है (– ऐसा लिया है।) उसकी और इसकी शैली एक ही है। समझ में आया कुछ ?

यहाँ तो भगवान आत्मा महान पदार्थ, अनन्त शान्तरस, आनन्दकन्द प्रभु (है)। बस ! उसकी अन्तर्मुख दृष्टि स्व के आश्रय से (होना), उसका ज्ञान, चारित्र मोक्षमार्ग तो एक ही है,

परन्तु साथ में ऐसा निमित्त होता है, उसे व्यवहार कहने में (आता है)। कथन की ऐसी पद्धति है – ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? वाणी का विलास ही ऐसा है कि उसे इस प्रकार से कहते है। वस्तु तो यह है वह है। अन्दर निर्विकल्प दृष्टि (हुई) वह। निर्विकल्प ज्ञान शान्ति... !

मुमुक्षु :- वाच्य नहीं।

उत्तर :- वह वाच्य नहीं, अर्थात् निमित्त है, परन्तु वह सब कथनमात्र है, वस्तुस्वरूप नहीं है। निमित्त है, वह यह वस्तु नहीं है – ऐसा कहते हैं। जो यह मोक्षमार्ग कहा जाता है वह नहीं। यह वस्तु है, वह यह नहीं (अर्थात् कि) सहचर है, वह यह निश्चय नहीं, ऐसा। समझ में आया ? भाई ! यह तो ऐसी बात है न कि अन्तर की बात के दो प्रकार कथन क्यों किये ? तो एक तो वचन द्वारा उसका कथन किया है। भेद करने कहना है तो कहते हैं, यह श्रद्धा-देव-गुरु की, नौ तत्त्व की श्रद्धा को समकित कहा। समझ में आया ? वास्तव में वह समकित कहाँ है ? वह तो राग है। समझ में आया ? समकित तो यह एक ही है - ज्ञान में निर्विकल्प प्रतीति होना, यह एक समकित है, वह तो राग है। राग को समकित कहना ? परन्तु कहते हैं कि निमित्त की श्रद्धा की पर्याय नहीं – ऐसा होने पर भी निमित्त की ऐसी श्रद्धा का ज्ञान इसे होता है; इस कारण उसे व्यवहार समकित का आरोप दिया जाता है। वह कथनमात्र है, वह (वास्तव में) वस्तु नहीं है। अद्भुत बात, भाई ! कहो, भाई ! समझे या नहीं ? कहाँ आया ? नीचे।

इस एक-एक में विशिष्टता है। पहले अकेला व्यवहार और फिर अकेला निश्चय या पहले अकेला निश्चय और फिर अकेला व्यवहार – ऐसा नहीं है। पहले अकेला-व्यवहार और फिर निश्चय – ऐसा नहीं है – यह कहते है। समझ में आया ? चौथे, पाँचवे, छठवे में अकेला व्यवहारमोक्षमार्ग और फिर सातवें से अकेला निश्चय है – ऐसा नहीं है। साथ के व्यवहार को आरोप करके, निमित्त जानकर कथन किया है। ऐसी निरूपण की पद्धति है। आहा..हा..! समझ में आया या नहीं ? यह 'मोक्षमार्गप्रकाशक' का (आधार दिया है)) गुजराती पृष्ठ ६५३-६५४। (हिन्दी पृष्ठ २५८-२५९ है।)

अब, दूसरी गाथा। समझ में आया या नहीं, भाई ! लो ! भाई ! बात सत्य।

इसे समझना चाहिए न ? ऐसे तोड़-मरोड़ करे ऐसे नहीं। वस्तु जैसी है, वैसे उसे ख्याल में लेना चाहिए न ! कथन की क्या पद्धति है और स्वरूप जिस प्रकार है, उसे समझ ले। दो प्रकार, दूसरा पहलू है अवश्य, परन्तु वह तो कथन का निरूपण - कथन पद्धति की अपेक्षा से कहा है; वस्तुस्वरूप की अपेक्षा से नहीं। स्वरूप में (स्थिरता) वह चारित्र - यह सत्य है, विकल्प उत्पन्न हो, उसे चारित्र कहना ? वह तो अस्थिरता है। पंचमहाव्रत के (विकल्प) तो अस्थिरता है, लो ! है ? परन्तु उस समय मुनि की दशा में ऐसे ही राग की मन्दतावाला अहिंसा आदि का विकल्प होता है, उसे व्यवहार से निमित्त की अनुकूलता व्यवहारचारित्र है - ऐसा कहने में आया है; है नहीं। आहा..हा.. ! इसी तरह भगवान आत्मा का आत्मज्ञान, चैतन्य का ज्ञान, वही ज्ञान है, परन्तु उसके विकल्प में शास्त्र का ज्ञान, सर्वज्ञ कथित ज्ञान - छह द्रव्य आदि का ज्ञान जो विकल्परूप से है, उसे निमित्तरूप से एक समय की पर्याय की ऐसी ताकत है - यह गिनकर विकल्पात्मक ज्ञान को आरोप से कहा है कि, यह व्यवहारज्ञान है। वह व्यवहार, ज्ञान है ही नहीं, वह ज्ञान ही नहीं है। आहा..हा.. ! भाई ! समझ में आता है या नहीं ? धीरे-धीरे समझना। इसमें कोई एकदम नहीं चलता।

निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का स्वरूप

परद्रव्यनतैं भिन्न आपमें रुचि, समकित भला है;
आपरूपको जानपनों, सो सम्यग्ज्ञान कला हैं।
आपरूपमें लीन रहे थिर, सम्यग्चारित्र सोई;
अब व्यवहार मोक्षमग सुनिये, हेतु नियतको होई।।२।।

अन्वयार्थ :- (आपमें) आत्मा में (परद्रव्यनतैं) परवस्तुओं से (भिन्न) भिन्नत्व को (रुचि) श्रद्धा करना सो (भला) निश्चय (समकित) सम्यग्दर्शन है; (आपरूपको) आत्मा के

स्वरूप को (परद्रव्यनतैं भिन्न) परद्रव्यों से भिन्न (जानपनों) जानना (सो) वह (सम्यग्ज्ञान) निश्चय सम्यग्ज्ञान (कला) प्रकाश (है) है। (परद्रव्यनतैं भिन्न) परद्रव्यों से भिन्न ऐसे (आपरूपमें) आत्मस्वरूप में (थिर) स्थिरतापूर्वक (लीन रहे) लीन होना सो (सम्यक्चारित) निश्चय सम्यक्चारित्र (सोई) है। (अब) अब (व्यवहारमोक्षमग) व्यवहार-मोक्षमार्ग (सुनिये) सुनो कि जो व्यवहारमोक्षमार्ग (नियतको) निश्चय-मोक्षमार्ग का (हेतु) निमित्तकारण (होई) है।

भावार्थ :- परपदार्थों से त्रिकाल भिन्न ऐसे निज-आत्मा का अटल विश्वास करना, उसे निश्चयसम्यग्दर्शन कहते हैं। आत्मा को परवस्तुओं से भिन्न जानना (ज्ञान करना। उसे निश्चयसम्यग्ज्ञान कहा जाता है। तथा परद्रव्यों का आलम्बन छोड़कर आत्मस्वरूप में एकाग्रतासे मग्न होना, वह निश्चय सम्यक्चारित्र (यथार्थ आचरण) कहलाता है। अब आगे व्यवहार-मोक्षमार्ग का कथन करते हैं क्योंकि जब निश्चय-मोक्षमार्ग हो, तब व्यवहार-मोक्षमार्ग निमित्तरूप में कैसा होता है वह जानना चाहिए।

अब, दूसरी गाथा। (पहले) जो सत्यार्थ कहा था न ! '**सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरण शिवमग, जो सत्यारथरूप सो निश्चय -**' ऐसा ले लेना। '**सम्यग्दर्शन ज्ञान-चरण शिवमग, जो सत्यारथरूप सो निश्चय।**' पहले पद का अब दूसरी गाथा में स्पष्टीकरण करते हैं।

परद्रव्यनतैं भिन्न आपमें रुचि, समकित भला है;
आपरूपको जानपनों, सो सम्यग्ज्ञान कला हैं।
आपरूपमें लीन रहे थिर, सम्यग्चारित्र सोई;
अब व्यवहार मोक्षमग सुनिये, हेतु नियतको होई।।२।।

'पुरुषार्थसिद्धियुपाय' में ऐसा जरा अर्थ किया है। यह २२वीं गाथा है न ? लो, यह निकली। देखो ! पाठ है न ? भाई ! अपने २२ का आधार दिया है न ? इसमें कहीं पीछे कहा है न ? 'पुरुषार्थसिद्धियुपाय' - गाथा २२। मुझे तो यहाँ दूसरी शैली कहनी है। कहते हैं -

'तत्त्वश्रद्धान सम्यग्दर्शन का लक्षण है। वह तत्त्वार्थश्रद्धा दो प्रकार से है - एक सामान्यरूप, एक विशेषरूप। जो परभावों से भिन्न...' यहाँ यह शब्द पड़ा है न ? **'अपने चैतन्यस्वरूप को निजरूप से श्रद्धान करे, उसे सामान्य तत्त्वार्थश्रद्धान कहते हैं।'** यहाँ कहा न ? **'परद्रव्यनतैं भिन्न आपमे रुचि समकित भला है;...'** उसकी व्याख्या यहाँ स्वयं करते हैं।

जीवाजीवादीनां तत्त्वार्थानां सदैव कर्तव्यम्;
श्रद्धानं विपरीताभिनिवेशंविविक्तमात्मरूपं तत्॥२२॥

यह सम्यग्दर्शन आत्मरूप-स्वरूप है, यह कोई विकल्प और राग नहीं है। तत्त्वार्थ सम्यग्दर्शन । आत्मज्ञान सहित की प्रतीति, वह आत्मस्वरूप है। अब, यहाँ कहते हैं - परद्रव्य से भिन्न सामान्यरूप तो एक है। परद्रव्य से भिन्न एक सामान्यरूप है। **'यह श्रद्धान तो नारकी, तिर्यञ्चादि सर्व सम्यग्दृष्टि जीवों को होता है।'** यह सामान्य। समझ में आया ? **'और जीव-अजीवादि सात तत्त्वों के विशेषण जानकर अर्थात् उनके भेदों को जानकर श्रद्धान करे, उसे विशेष तत्त्वार्थश्रद्धान कहते हैं। यह श्रद्धान मनुष्य-देवादि विशेष बुद्धिवान जीवों को होता है परन्तु राजमार्ग (मुख्यमार्ग) की अपेक्षा सात तत्त्वों को जानना, वही समकित का - सम्यक् श्रद्धान का कारण है।'** इसलिए कहा था। लो ! समझ में आया ? उसमें दो प्रकार 'टोडरमलजी'ने स्वयं ही उतारे, तत्त्वार्थश्रद्धान की सामान्यरूप से व्याख्या की। सामान्य बुद्धि थोड़ी होवे, उसे **'परद्रव्यनतै भिन्न आपमें रुचि, समकित भला है'** और विशेषरूप से बुद्धिवाला हो, वह विशेष जानकर अन्दर तत्त्व की श्रद्धा करे।

निश्चय सम्यक्दर्शन

'(आपमें) आत्मा में परवस्तुओं से भिन्नपने की...' समझ में आया ? इसमें सब है। कहाँ गये ? भाई गये ? उनके पास

एक पुस्तक थी न ? है न ? देखो ! अन्दर। यह सम्यग्दर्शन में यह सब लिखा है। क्या लिखा है ? किसने किया है ? भाई ! आप क्या समझे ? यह परद्रव्य - छह द्रव्य देखे हैं। गृहस्थाश्रम में बैठा हो, यह ठीक है। गृहस्थाश्रम में रहा हो यह सब होने पर भी परद्रव्य से भिन्न है, ऐसा। ऐसी शैली की है न ? बराबर है, ठीक है। यह चित्र है न ? एक ओर बाजा है और एक ओर मकान और एक ओर यह सब घर का सारा सामान ऐसा सब लगता है। चित्र... चित्र है। कहते हैं, ये सब हो - स्त्री, पुत्र, परिवार घर का सामान समझे न ? देखो ! यहाँ सब चित्र में डाला है।

'**परद्रव्यन्तैं भिन्न...**' परद्रव्य अर्थात् सभी चीजें, घरेलू वस्तुएँ, स्त्री, पुत्र, मकान .. समझ में आता है न ? तथापि आत्मा अन्दर बैठा होवे (उसे) '**आत्मा में परवस्तुओं से भिन्नपने की श्रद्धा करनी...**' उस गृहस्थाश्रम में भी यह सम्यग्दर्शन इस प्रकार प्रकट हो सकता है। समझ में आया कुछ ?

मुमुक्षु :- परद्रव्य में पड़ा होने पर भी ?

उत्तर :- पड़ा नहीं; परद्रव्य यहाँ होनेपर भी उसमें ऐसा पड़ा नहीं है; पड़ा तो आत्मामें है। परद्रव्य के सम्बन्ध में रहा होने पर भी, परद्रव्य में नहीं रहा है। परद्रव्य में तो कुछ रहा ही नहीं है। भाई ! यह तो भई सूक्ष्म बात है। परद्रव्य साथ में होता है, तथापि आत्मा में परवस्तुओं से भिन्नपने की श्रद्धा करनी। ऐसी चीज, इस क्षेत्र में सब शामिल दिखे, फिर भी उससे भिन्न आत्मा अखण्ड ज्ञान, चैतन्यमूर्ति है - ऐसा ज्ञान का ज्ञान करके, प्रतीति करना इसका नाम निश्चयसम्यग्दर्शन है। समझ में आया ?

'**आत्मा में (परद्रव्यनतैं) परवस्तुओं से...**' ऐसा अनुमान लाता है, क्योंकि यह सब ऐसी शैली लगती है। भाई ने कहा - ऐसा लगता है। ऐसा लगता है, नहीं ? यह सब द्रव्य रखे है न ? यह सब घर की चीजें हैं, यह बाजा है, यह मकान है, अमुक है, तिजोरी है, बर्तन है। लो, यह ठीक किया है। यह सब बर्तन है न ? कलशा-फलशा है न... चिमटा और सब घर में पड़े हैं। आत्मा परद्रव्यनतैं भिन्न... भगवान आत्मा इन सब वस्तुओं से अत्यन्त पृथक् हैं। ज्ञानमूर्ति आनन्दस्वरूप है - ऐसे परद्रव्य से भिन्नपने की श्रद्धा (करना); श्रद्धा अर्थात् आत्मा की निर्विकल्प श्रद्धा... हाँ! '**वह निश्चयसम्यग्दर्शन है...**' देखो ! 'भला' की व्याख्या की। यह

सत्यार्थ कहा था न ? सत्यार्थ कहा था न ? कहाँ ? पहली पंक्ति में। सत्यार्थ सम्यग्दर्शन, सत्यार्थ सम्यग्ज्ञान, सत्यार्थ चारित्र – ऐसे तीन है न ? वह यहाँ 'भला' शब्द में सत्यार्थ मिला दिया है, भाई ! समझ में आया ? यही निश्चय है और यही भला है और यही यथार्थ है।

'**आत्मा में परवस्तुओं से भिन्नपने की श्रद्धा करना...**' स्वयं राग से, शरीर से, कर्म से, पर से भिन्न है – इसका अर्थ यह हुआ कि पर का लक्ष्य छोड़कर स्व-विषय में आया, इसलिए वह राग से भिन्न हो गया। ऐसे जो परद्रव्य-शरीर, वाणी, कर्म – यह सब था, उनसे ऐसे लक्ष्य हटाया, इसलिए उसकी दृष्टि द्रव्यस्वभाव पर गयी। द्रव्यस्वभाव की दृष्टि हुई, उसका नाम निश्चय, सत्यार्थ, भला सम्यग्दर्शन कहा जाता है। कहो, इसमें समझ में आया ? यह तो सादी बात है। सबके हाथ में (पुस्तक) है या नहीं ? यह तो सादी हिन्दी भाषा में पुस्तके कितनी छप गयी हैं ?

भगवान आत्मा... ? '**आपमें...**' (कहा तो) आत्मा कौन है ? – इसका इसे पहले ज्ञान होना चाहिए न ? आत्मा अर्थात् परद्रव्य से भिन्न चीज़। सब पर – कर्म, शरीर, वाणी – ये सब जो हैं, वे नहीं। इस अस्तित्व में जो पर्यायबुद्धि से ऐसा है; पर्याय-अवस्थाबुद्धि से उसका फैलाव में यह सब है – ऐसा जो था वह, यह नहीं, ऐसा गया। ज्ञायक चैतन्यमूर्ति, आप अर्थात् ज्ञायक चैतन्यमूर्ति; उसकी अन्तर्दृष्टि होने पर वह राग और विकल्प भी (बाहर रह गया)। ऐसे के ऐसे लक्ष्य जाने से राग और विकल्प भी उसकी प्रतीति में ही रहा, आत्मा रह गया। समझ में आया ?

'**(आपमें) आत्मा में परवस्तुओं से भिन्नता की श्रद्धा...**' अर्थात् कर्म, शरीर से भिन्न, उनसे पृथक्... ऐसे जहाँ जाए तो उसके अन्तर में – तलेटी में विकल्प भी लक्ष्य में नहीं रहे। समझ में आया ? यह आत्मा परद्रव्य से भिन्न है। उस भिन्न चीज़ में अस्तित्व माना था कि यह। ऐसा होने पर भी उस परद्रव्य से पृथक् और विकल्प से भी पृथक् – ऐसा आत्मतत्त्व, उसके अन्दर प्रतीति – श्रद्धा, ज्ञान, भान होकर होना – उसका नाम निश्चय, भला, सच्चा, शुद्ध, उचित, मुख्य सम्यग्दर्शन है। कहो, समझ में आया ? सत्यार्थ में जितने शब्द प्रयोग किये थे (वे कहे।) यह एक-एक की इस प्रकार से बात आती है। 'भला' शब्द कहा है न। देखो ! उसमें 'कला' कहेंगे, ज्ञान है न ? (उसे) कला (कहेंगे)। भाषा भी बहुत सन्तुलित रखी है।

यह हिन्दी तुम्हें अब तक पढ़ना नहीं आया। यह तुम्हारी भाषा है। हमारी तो हिन्दी भाषा भी नहीं है।

'**परद्रव्यनतैं भिन्न**...' आहा..हा..! कितनी बात ली है, देखो न ! उसमें भिन्न स्वद्रव्य। उसका अर्थ ऐसे गुलांट खाता है। परद्रव्य से पृथक् तो स्वद्रव्य, बस ! ऐसा ही आया। आप - अपना स्वरूप अखण्ड ज्ञायकमूर्ति '**ण वि होदि अप्पमत्तो**' है न ? '**जाणगो दु जो भावो**' - यह ज्ञायक रह गया। अकेला आत्मा शुद्ध एकरूप, उसकी अन्तर-प्रतीति होना - श्रद्धा होना, उसका अन्तर विश्वास (आना कि) यह वस्तु है - ऐसा विश्वास (आना) आगे अर्थ में जरा कहेंगे। कहीं है, विश्वास। समझ में आया ? इसलिए कहते हैं; ऐसा विश्वास (आना चाहिए।) दृष्टि में (आत्मा) आया हो, उसका विश्वास होवे न ? वस्तु का पता न हो, उसका विश्वास क्या होगा ? खरगोश के सींग का विश्वास करना... परन्तु देखे नहीं, है नहीं; (विश्वास क्या करना) ? यह वस्तु ज्ञायक चैतन्य अकेले ज्ञान की पुंज वस्तु, उसका अन्तर में विश्वास (आगे कि) यही आत्मा है - ऐसी प्रतीति - ऐसा भरोसा, एसा विश्वास, एसा स्व आश्रित दर्शन (होवे), वह सम्यग्दर्शन सच्चा है। सच्चा कहो या भला कहो या शुद्ध सम्यग्दर्शन यह है। यह शुद्ध सम्यग्दर्शन है। समझ में आया ? यह सम्यग्दर्शन मुख्य है। व्यवहार सम्यग्दर्शन तो विकल्प, गौण, अशुद्ध, उपचार से कहते हैं। समझ में आया ?

निश्चय सम्यक्दर्शन

'**परद्रव्यनतैं भिन्न**...' आत्मा के स्वरूप को परद्रव्य से भिन्न - इसका अर्थ हो गया न ? '**परद्रव्यनतैं भिन्न आपमे रुचि (समकित) भला है!**' अब '**परद्रव्यनतैं... आपरूप को जानपनों सो... (भला है), सम्यग्ज्ञान कला है।**' समझ में आया ? '**(आत्मरूप को) आत्मा के स्वरूप को पर से भिन्न**...' शास्त्रज्ञान विकल्प है, वह नहीं। '**आत्मा के स्वरूप को... (आपरूप को)**...' है न ? उसमें आपमें कहा था, इसमें आपरूप ज्ञान

है। आत्मा के स्वरूप को परद्रव्य से भिन्न, पर से पृथक् जानना। आत्मा, पर के ज्ञान, श्रद्धा, विकल्प या पर से अत्यन्त भिन्न है। यह तो परद्रव्य से भिन्न ज्ञान हुआ तो आत्मा का ज्ञान हुआ। उसका व्यवहार ज्ञान इसके लक्ष्य में नहीं रहा। समझ में आया ?

'**आत्मा के स्वरूप को पर से भिन्न जानना, वह निश्चय सम्यग्ज्ञान है,...**' वह सम्यग्ज्ञान सच्चा है, भला है, शुद्ध है, वह मुख्य सम्यग्ज्ञान है। समझ में आया कुछ ? '**वह निश्चय सम्यग्ज्ञान प्रकाश है।**' वह कला है, क्योंकि केवलज्ञान को प्रकट करने की यह एक कला है। केवलज्ञान को प्रकट करने की, आत्मज्ञान वह एक कला है। कला कही है न ? कला करते हैं - ऐसा 'समयसार' में आता है न ? क्रीड़ा करते हैं - यह पढ़ा है, भाषा सब शास्त्र की प्रयोग की है। समझ में आया ?

भगवान आत्मा अकेला ज्ञान का पिण्ड प्रभु, उसे परद्रव्य से लक्ष्य छोड़कर जैसी स्व की श्रद्धा हुई; ऐसा ही परद्रव्य से लक्ष्य छूटकर जो श्रद्धा हुई, उसमें उसका ज्ञान हुआ - यह आत्मा शुद्ध चैतन्य है, उसके स्वरूप का ज्ञान हुआ। समझ में आया ? '**(आपरूप को)...**' चैतन्य ज्ञायकस्वरूप पूर्ण आनन्दस्वरूप, उसका परद्रव्यों से पृथक् पड़ा हुआ अकेले आत्मा का ज्ञान, वह निश्चय ज्ञान है, वह सच्चा ज्ञान है, वह भला ज्ञान है; उसे शुद्ध ज्ञान की कला कहा जाता है। यह शुद्ध ज्ञान की कला उसे कहा जाता है। भाई ! कहो, समझ में आता है या नहीं ? यह तो साथ में पुस्तक है, लिया है या नहीं ? भाई ! पुस्तकें बहुत रखी हैं, हो रहा ? यहाँ तो बहुत पुस्तकें हैं, पहले से ध्यान रखना चाहिए न ! यह पुस्तकें बहुत पड़ी हैं। वहाँ तो बहियों में ध्यान रखता है... यह तो कितनी पड़ी है, देखो न ! अभी पड़ी लगती है, नहीं ? अभी बहुत पड़ी है। कहो, समझ में आया इसमें ? यह तो अन्दर में शब्द-शब्द का अर्थ समझने योग्य है। यह कोई साधारण बात नहीं है। शास्त्र जैसा ही अर्थ किया है। शास्त्र को ठीक से ध्यान रखकर (समझना चाहिए)।

भगवान आत्मा का बीजज्ञान प्रकट होना। चैतन्यस्वरूप का परद्रव्य से लक्ष्य छाड़कर जैसी अपनी आत्मा में श्रद्धा - सम्यग्दर्शन था, वैसा ही आत्मस्वरूप का ज्ञान, उसके स्वरूप का ज्ञान, आत्मस्वरूप का ज्ञान (होना), वही ज्ञान सम्यक् है, वही ज्ञान शुद्ध है, वही ज्ञान मुख्य है और वही ज्ञान केवलज्ञान को प्रकट करने की कला है। कहो, इसमें समझ में आया ?

दूसरे शास्त्र आदि का व्यवहारज्ञान, यह केवलज्ञान प्रकट करने की कला है ही नहीं – ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! ऐ..ई !

मुमुक्षु :– ...

उत्तर :– यह तो एक कहने के लिए निमित्त सहचर ऐसा देखकर, उसे ज्ञान है – ऐसा कहेंगे। वह वास्तविक कला नहीं है, वह सम्यग्ज्ञान वास्तविक नहीं है, वह शुद्धज्ञान नहीं है। आहा..हा..!

मुमुक्षु :– सम्यग्ज्ञान को दीपक बताया है।

उत्तर :– हाँ यह इसमें बताया है। सत्य बात है। इसमें बताया है न ? इसमें बताया है, देखो ! यह दर्शन में बताया, यहाँ दीपक बताया है। मन की पंखुड़ी फिर जाती है। ऐसी कला, ज्ञान का दीपक किया है। देखो ! यह ज्ञानस्वरूप, उसका ज्ञान। परद्रव्यों से भिन्न, उसका ज्ञान... यह तो पहली सामान्य व्याख्या है न। फिर सब विशेषरूप से बतायेंगे। सामान्य रीति से कितने ही जीवों को – नारकी आदि को ऐसा होता है। विशेष बुद्धिवाले को विस्तार से होता है। समझ में आया ?'**वह निश्चय सम्यग्ज्ञान (कला)...**' (कला का) अर्थ प्रकाश है। लो !

'**आपरूप में लीन रहे थिर, सम्यक्चारित सोई;**' 'सोई' वह चारित्र है। '**आत्मस्वरूप में...**' देखो ! यहाँ चारित्र है न ? स्थिर बिम्ब हो गया है। चारित्र का दृष्टान्त दिया है न ? लीन... लीन। विकल्पों की धालमेल निकल गयी है। '**(आपरूप में) आत्मस्वरूप में स्थिरतापूर्वक...**' अर्थात् स्थिर '**(लीन रहे)...**' स्थिर-लीन रहे, ऐसा। स्थिर-लीन रहे। देखा ! यह चारित्र। पंच महाव्रत का विकल्प, वह चारित्र नहीं; वह सम्यक् चारित्र नहीं, भला चारित्र नहीं, शुद्ध चारित्र नहीं। वह तो गौणरूप से निमित्त ऐसा होता है – ऐसा गिनकर सहचररूप से चारित्र कहने के कथन में कहा गया है। आङा..हा..! अब ऐसी बात कितनी स्पष्ट पड़ी है – इसका अर्थ भी नहीं समझते। ऐसी बात है ?

मुमुक्षु :– ...

उत्तर :– विषय में... उसमें हैं। वह वस्तु उसमें हो परन्तु होवे वह आवे न या नहीं ? क्या

आवे ? हीरा बताना हो तो उसे किस प्रकार बताना ? हीरे की जो कीमत तो उसकी आँख ठीक हो, तब समझे या नहीं ? हीरा के पासा का प्रकाश हो, उस प्रकाश में प्रकाश के पासा झट से अलग पड़ते नहीं। वह पासा - पासा देखे (उसके लिए) उसे सूक्ष्म दृष्टि चाहिए या नहीं ? वरना एक में दूसरा प्रकाश देखे बिना एक समान लगेगा। इसी तरह भगवान आत्मा अकेला ज्ञान की मूति है, उसका अन्तर में ज्ञान (होवे), स्थिरता (होवे)। स्थिर और लीन - ऐसा कहा है न ? स्थिर-लीन। स्थिर ऐसा हुआ कि लीन हो गया, विकल्परहित (हो गया)। परद्रव्य से लक्ष्य छोड़कर जैसी श्रद्धा हुई थी, ज्ञान हुआ था, अत: व्यवहार का विकल्प भी नहीं रहा। इस प्रकार लीन हो गया, इसलिए निश्चय हुआ। यह हुआ, उसके साथ विकल्प कैसा (होता है) ? उसका-व्यवहार का ज्ञान बाद में करायेंगे। समझ में आया ?

'**(सम्यक्चारित्र) निश्चय सम्यक्चारित्र (सोई) है।**' ऐसा कहते हैं। सो.. सोई अर्थात् वह सम्यक्चारित्र है। पहले 'भला' (शब्द) प्रयोग किया था, दूसरे में (शब्द) प्रयोग किया था 'कला', इसमें (शब्द) प्रयोग किया है 'वही' - ऐसा। भगवान आत्मा अकेला ज्ञान का रस, उसकी श्रद्धा-ज्ञान सहित अन्दर की लीनता (होवे), वह चारित्र भला है, वह चारित्र शुद्ध है, वह चारित्र मुख्य है; उस चारित्र को निश्चयचारित्र कहा जाता है। सच्चा चारित्र वह है। सत्यार्थ कहा था न ? सम्यग्दर्शन भी सच्चा, सम्यग्ज्ञान भी सच्चा और चारित्र भी सच्चा - ये तीनों सच्चे। समझ में आया ? यह 'छहढाला' तो कितनी बिक गयी ! इसे पता होगा। यहाँ पहले छप गयी है न ? १४००० हिन्दी, गुजराती ? (पता) नहीं होगा। अपनी तरफ से छपाई ? कहो, कितने हजार ? इसमें कोई संस्कृत, व्याकरण की आवश्यकता पड़े - ऐसा नहीं है।

अब कहते हैं, निश्चयचारित्र वह है। वह भला है। '**अब,...**' देखो ! भाषा है न ? '**व्यवहारमोक्षमार्ग सुनो...**' देखो ! निश्चय लेकर व्यवहार लिया है। भाई ! ऐ..ई ! यह वस्तुस्थिति है। अब उसमें जरा सहचररूप, विकल्परूप, शुभ उपयोगरूप भाव होता है; उसे यह निश्चय होता है तो इसे व्यवहार कहा जाता है। अब, कहा है न ?'**अब व्यवहारमोक्षमार्ग सुनो...**' कुछ समझ में आता है ? अब अर्थात् ऐसा (निश्चय) हो, वहाँ अन्दर दूसरा एक विकल्प का भाग, व्यवहार से अनुकूल। निश्चय समकित दर्शन को व्यवहार अनुकूल दर्शन; निश्चय ज्ञान को व्यवहार शास्त्र का विकल्प निमित्त अनुकूल, व्यवहार से अनुकूल, हाँ ! कारण

कि निश्चय तो यह है। उसे फिर यह निश्चय कहाँ से आवे ? समझ में आया ? उसे व्यवहार से अनुकूल, पंच महाव्रत आदि।

'**अब व्यवहार मोक्षमग सुनिये, हेतु नियतको होई।**' यहाँ विवाद (पड़ता है)। यह नियत का निमित्त है। जहाँ ऐसा निश्चय होता है, वहाँ ऐसा हेतु, व्यवहार कारणरूप-निमित्तरूप, हेतुरूप से होता है। समझ में आया ? जैसे, गति करते हुए जीव या पुद्गल को धर्मास्तिकाय का निमित्तरूप हेतु है। है या नहीं ? अथवा परिणमन के समय में जड़ या चैतन्य आदि परिणमते हैं, उन्हें कालद्रव्य निमित्त-हेतु है। निमित्तरूप हेतु है, हेतु है। वह परचीज़ है। यह करे तब, (उसे) हेतु कहा जाता है। समझ में आया ? शास्त्र में निमित्त को धर्मास्तिकायवत् लिया है, अतः व्यवहार भी निमित्त ही है।

यह अपने ४७ बोल (दोहों) में आता है। निमित्त - उपादान के ४७ दोहों में (आता है)। वरना बीच में पंच महाव्रत आते है न ? आता है न उसमें ? वह निमित्त कहा है। वहाँ वह निमित्त कहा है। उसका तर्क करते हैं, निमित्त तर्क करता है। पंच महाव्रत है न ? तुम हमें कैसे छोड़ दोगे ? भले हो, परन्तु उन्हें छोड़कर स्थिर हो, तब वास्तविक चारित्र है। समझ में आया ? ४७ दोहों में, भैया 'भगवतीदास' ने यही लिया है। उन लोगों ने - पहले के पण्डितों ने भी ऐसी संधि से बात की है न ? दिगम्बर पण्डित ! सन्तों की तो क्या बात करना !! उन लोगों ने भी, परम्परा से जैसा सत्य है, उस प्रकार सुरक्षित रखकर बात की है। यहाँ ऐसा कहा है, पंच महाव्रत होते है न ? अरे..! ध्यान होता है न ? निमित्त तो वहाँ तक डाला है। ध्यान अर्थात् मैं ऐसा करुँ - ऐसा विकल्प, (वह) होता है न ? 'छोड़ ध्यान की धारणा, मोड रीति...' यहाँ आ जा, कहते हैं। यह निमित्त है। हो, वह क्या है ? उसे छोड़कर यहाँ आ जाए, तब स्थिर होता है। निश्चयमोक्षमार्ग का हेतु... इतने न्याय दिये। समझ में आया ? उसका निमित्त, कारण होता है, होता है - ऐसा कहा है। समझे न ? 'सोई' के साथ 'होई' कराया। व्यवहार होता है, व्यवहार है अवश्य परन्तु व्यवहार को उपचाररूप कहा जाता है।

'**भावार्थ :- परपदार्थो से त्रिकाल भिन्न ऐसे निज आत्मा का अटल विश्वास करना उसे...**' लो ! अटल विश्वास अर्थात् टले नहीं ऐसा प्रकार, निश्चयसम्यग्दर्शन, अपने निजत्व का

दर्शन है, वह कोई विकल्प नहीं है कि टल जाए। वह तो ऐसा का ऐसा रहता है। यह निश्चयसम्यग्दर्शन प्रकट हुआ, वह ऐसा का ऐसा सिद्ध में भी रहता है – ऐसा। समझ में आया ? व्यवहार समकित नहीं रहता, वह तो विकल्प है, वह कहाँ वास्तविक चीज़ थी ? श्रद्धा कही है न ? '**आप - में रुचि**' – रुचि अर्थात् विश्वास, वह ऐसा प्रकट हुआ, वह चैतन्यमूर्ति ज्ञानस्वरूप है – यह विश्वास की, रुचि की पर्याय सिद्ध में भी रह गयी। समझ में आया ? उसकी चारित्र पर्याय केवलज्ञान में रह गयी। आहा..हा..! '**उसे निश्चयसम्यग्दर्शन कहते हैं।**' लो !

'**आत्मा को परवस्तुओं से भिन्न जानना (ज्ञान करना), उसे निश्चय सम्यग्ज्ञान कहा जाता है तथा परद्रव्यों का अवलम्बन छोड़कर...**' लक्ष्य छोड़कर, आश्रय छोड़कर '**आत्मस्वरूप में एकाग्रता से मग्न होना, एकाग्रता अर्थात् एक ही आत्मा को लक्ष्य करके (लीन होना), वह निश्चय सम्यक्चारित्र...**' अर्थात् सच्चा आचरण है। वह आचरण सच्चा है, स्वभाव में स्थिर होना वह आचरण सच्चा है। वह भला आचरण है। लो ! (अज्ञानी) आचरण... आचरण करते हैं या नहीं ? विकल्प है, वह आचरण नहीं है। साथ में वैसा निमित्त देखकर कथन की अपेक्षा से (लिया है)। व्यवहार से अनुकूल। निमित्त अर्थात् अनुकूल। अनुकूल अर्थात् व्यवहार से अनुकूल। निश्चय से अनुकूल तो निश्चय अनुकूल अपनी पर्याय है। धर्मास्तिकाय को व्यवहार से अनुकूल कहा है या नहीं ? वह निमित्त है। या निश्चय से (कहा है) ? निश्चय से तो अपनी पर्याय अनुकूल है। इस प्रकार गति-स्थिति में परिणमती है, उसकी तरह – जैसे धर्मास्तिकाय निमित्त है, व्यवहार से अनुकूल है, दूसरी चीज़ है, उसे गति में ऐसा ही निमित्त, योग्यता होती है; अधर्मास्तिकाय का निमित्त नहीं होता। गति होने पर अधर्मास्तिकाय का निमित्त होता है ? इसलिए अनुकूल निमित्त कहा जाता है। इसी प्रकार (जहाँ) ऐसे श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र हो, वहाँ आगे ऐसा जो व्यवहार (होता है, उसे अनुकूल कहा जाता है)।

'**परद्रव्यों का अवलम्बन छोड़कर आत्मस्वरूप में एकाग्रता से मग्न होना, वह निश्चय सम्यक्चारित्र (यथार्थ आचरण) कहा जाता है।**' ऐसे आचरण के साथ आगे जो निमित्त अब कहते हैं... '**अब आगे व्यवहारमोक्षमार्ग का कथन...**' अर्थात् साथ में ऐसा निमित्त है। यहाँ

सहज परिणमन चलता है, तब ऐसा व्यवहार होता है – धर्मास्तिकाय के निमित्तवत्। भगवान पूज्यपादस्वामी ने (इष्टोपदेश) ३५वीं गाथा में कहा है कि निमित्त कैसा ? कि धर्मास्तिकायवत् ले लेना। वह भी निमित्त है। ऐसा कहते ही उसमें पहले – बाद में नहीं है। ऐसा कहते ही वह यथार्थ वस्तु नहीं है – ऐसा है। समझ में आया ? वस्तु की शुद्ध श्रद्धा–ज्ञान और स्थिरता होने पर साथ में ऐसा एक व्यवहार उसके काल में, उसी काल में सहचररूप से साथ में ऐसा एक निमित्त होता है, उसे व्यवहारमोक्षमार्ग का आरोप कहा जाता है। है नहीं, उसे कहना – इसका नाम व्यवहार है। समझ में आया ?

'अब, आगे व्यवहारमोक्षमार्ग का कथन कहा जाता है क्योंकि जब निश्चयमोक्षमार्ग हो...' जहाँ स्वभाव चैतन्य भगवान की श्रद्धा–ज्ञान और स्थिरता हो, **'तब व्यवहारमोक्षमार्ग निमित्तरूप में कैसा होता है...'** अर्थात् निमित्तरूप कैसा होता है। समझ में आया ? वहाँ व्यवहारमोक्षमार्ग निमित्तरूप – सहचररूप से कैसा होता है ? **'वह जानना चाहिए।'** वह जानना चाहिए। जानना तो चाहिए न ? कहते हैं, समझ में आया ? व्यवहारमोक्षमार्ग सुनो ! सुनो (कहा तो) उसे समझना तो चाहिए न ? **'हेतु नियतको होई...'** तब एक निमित्त साथ है। उपचाररूप मोक्षमार्ग व्यवहार है, उसे इसे भलीभाँति जानना चाहिए। समझ में आया ? अब उस व्यवहार समकित अर्थात् सम्यग्दर्शन का स्वरूप कहते हैं। व्यहार सम्यग्दर्शन में किसकी श्रद्धा होती है ? वह व्यवहार सम्यग्दर्शन है तो विकल्प, शुभ–उपयोग है, वह कही सम्यग्दर्शन नहीं है, परन्तु उसमें भेदरूप जो नव तत्त्व है। उसमें अन्तर आत्मा (आदि) सब लेंगे, हाँ ! सब चीज़ें जैसी है वैसी इसकी श्रद्धा में व्यवहार में आनी चाहिए। समझ में आया ? इसके लिए उसका स्वरूप तीसरी गाथा में कहेंगे। लो.. ! (श्रोता :– प्रमाण वचन गुरुदेव !)

आत्मा जैसा और जितना महान पदार्थ है उतना महान मानना ही आत्माकी दया पालने रूप समाधि है । और ऐसे महान आत्माको रागादिरूप मानना अथवा मतिज्ञान आदि चार अल्पज्ञ पर्याय जितना मानना वह आत्माकी हिंसा है । (परमागमसार - ३४)